IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882
INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)
An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मौर्य कालीन व्यापारिक केन्द्रः एक अध्ययन

डॉ॰ नरेन्द्र कुमार
म॰ न॰ 1734 / 27, गली न॰ 2, कल्याण नगर, कुरूक्षेत्र, हरियाणा

मौर्य काल में गंगा घाटी आर्थिक और सांस्कृतिक जीवन का केन्द्र बिन्दु थी, इस प्रदेश की प्रकृति बहुत समृद्ध तथा भूमि बहुत उपजाऊ थी। यहां पर वन और खनिज–सम्पदा की कोई कमी नहीं थी, जिसके कारण इस क्षेत्र में अनेक नगरों और व्यापारिक केन्द्रों का उदय हुआ। ये सभी नगर व्यापार और वाणिज्य के साथ–साथ धर्म साहित्य तथा शिक्षा के केन्द्र भी रहे। लगभग 400 ई॰ पू॰ से लेकर 300 ई॰ पू॰ तक ये नगर उन्नति के चरमोत्कर्ष पर थे।[1] साहित्यिक एवं पुरातात्विक स्त्रोतों से तथा अनेक विदेशी यात्रियों के विवरणों से हमें मौर्य काल के इन नगरों के विषय में पर्याप्त जानकारी मिलती है। मैगस्थनीज के विवरण से पता चलता है कि उस समय पोरस के राज्य में अनेक नगर थे और आन्ध्र में उस समय 30 नगर थे। मौर्य साम्राज्य की राजधानी 'पाटलीपुत्र', जो एक उस समय एक विशाल एवं प्रसिद्ध नगर थी, का वर्णन भी मैगस्थनीज ने बहुत विस्तृत रूप से किया है।[2] कौटिल्य ने भी अर्थशास्त्र में तत्कालीन नगरों की रचना के सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, प्राचीन अनुश्रुतियों के अनुसार भी मौर्य सम्राट अशोक ने बहुत से स्तूप, चैत्यगृह, विहार और भवनों का निर्माण करवाया था। अर्थशास्त्र के 'दुर्ग विधानम' और 'दुर्ग निवेश' प्रकरणों में एक ऐसे नगर का चित्र प्रस्तुत किया है, जिसका निर्माण दुर्ग के रूप में किया गया है। निसन्देह पाटलीपुत्र इसी प्रकार का नगर था।[3] दिव्यावदान के अनुसार, अशोक ने 84,000 स्तूपों के निर्माण करवाया था।[4] महावंश में भी इसी प्रकार का वर्णन मिलता है।[5] सम्राट अशोक ने अपने लेखों में भी पाटलीपुत्र, बौद्धगया, कौशाम्बी, उज्जयिनी, तक्षशिला, सुवर्णगिरि तथा तोशाली इत्यादि मुख्य नगरों का वर्णन किया है। पांचवी शताब्दी ई॰ में जब चीनी यात्री फाह्यान भारत आया था तो उसने अशोक द्वारा बनवायी गयी अनेक कृतियों को देखा था, जिसका वर्णन उसने किया है।[6] कल्हण ने कश्मीर में श्रीनगर की स्थापना का श्रेय भी अशोक को दिया है। कल्हण ने अपने ग्रन्थ राजतंरगिणी में वर्णन किया है कि वितस्ता नदी के तट पर अशोक द्वारा जिस श्री नगरी का निर्माण कराया गया था, उसमें 96 लाख घर थे।[7]

मौर्य साम्राज्य अत्याधिक विशाल क्षेत्र में फैला हुआ था, इसलिये सम्पूर्ण साम्राज्य का प्रशासन राजधानी में चलाना सम्भव नहीं था। अतः प्रशासनिक सुव्यवस्था की दृष्टि से मौर्य शासकों ने अपने साम्राज्य को पांच प्रान्तों में विभक्त किया हुआ था और प्रत्येक प्रान्त की एक राजधानी होती थी। इनमें पहला चक्र (प्रान्त) 'मध्यदेश' था, इसमें बिहार, उत्तरप्रदेश और बंगाल सम्मिलित थे, इसकी राजधानी 'पाटलीपुत्र' थी। दूसरा 'उत्तरापथ' – इसमें कम्बोज, गांधार, कश्मीर, अफगानिस्तान, पंजाब आदि प्रदेश थे, इसकी राजधानी 'तक्षशिला' थी। पश्चिमी चक्र – इसमें काठियावाड़–गुजरात से लेकर राजपुताना–मालवा आदि प्रदेश थे, इसकी राजधानी 'उज्जयिनी' थी। दक्षिणापथ–'विन्ध्याचल' के दक्षिण का सारा प्रदेश इस चक्र में आता था और इसकी राजधानी 'पाटलीपुत्र' थी। 'कलिंग' (प्रान्त), इसकी राजधानी 'तोक्षाली' थी।

इन पांचों प्रान्तों का शासन चलाने के लिये प्रायः राजकुल के व्यक्तियों को ही नियुक्त किया जाता था, जिन्हें 'कुमार' कहते थे। इन पांचों चक्रों (प्रान्तों) के अन्तर्गत 'मंडल' भी होते थे, जिनमें कुमार के आधीन 'मामात्य' शासन करते थे, प्रान्तीय प्रतिनिधियों की सहायता के लिये अनेक कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे। पाटलीपुत्र के अतिरिक्त तक्षशिला, उज्जयिनी, स्वर्णगिरि और तोशाली उस समय मौर्य साम्राज्य की राजधानियां थी। ये सभी नगर राजधानी होने के साथ–साथ वाणिज्य–व्यापार के भी प्रसिद्ध केन्द्र थे।[8]

पाटलीपुत्र :

पाटलीपुत्र मौर्य साम्राज्य की केन्द्रीय राजधानी थी, जिसकी पहचान आधुनिक पटना से की गयी है। समीपवर्ती स्थल कुम्रहार और बुलन्दीबाग से इस नगर के अवशेष प्राप्त हुये हैं।[9] पाटलीपुत्र देशी और विदेशी व्यापारियों का मिलन–स्थल था। यह नगर जल एवं स्थल मार्गों द्वारा अन्य सभी व्यापारिक नगरों एवं बन्दरगाहों से जुड़ा हुआ था, जिसके कारण सुदूर देशों तक पाटलीपुत्र का बहुत अधिक व्यापारिक महत्व था। दीघनिकाय के अनुसार, एक बार महात्मा बुद्ध ने आनन्द से कहा था कि यह नगर आर्यों का मुख्य नगर बनेगा, यह यातायात का भी मुख्य केन्द्र था।[10] सामंतपासदिका में पाटलीपुत्र के साथ उत्तर–दक्षिण के व्यापारिक नगरों के सम्बन्धों के विषय में वर्णन मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार, अशोक ने बोधिवृक्ष की शाखा लाने के लिये श्रीलंका की अपनी यात्रा पाटलीपुत्र से ही आरम्भ की थी। वह गंगा को नाव द्वारा पार करके ताम्रलिप्ति पहुंचा और वहां से वह

एक पोत द्वारा श्रीलंका गया।[11] इससे यह स्पष्ट होता है कि मौर्य काल में पाटलीपुत्र से एक स्थल मार्ग ताम्रलिप्ति को भी जाता था। पाटलीपुत्र के अन्य दूसरे महत्वपूर्ण व्यापारिक नगरों से भी व्यापारिक सम्बन्ध थे।

पाटलीपुत्र के विदेशों के साथ भी व्यापारिक सम्बन्धों के विवरण मिलते हैं। पाटलीपुत्र से चीन को दो स्थलमार्ग जाते थे, जो चीन और पाटलीपुत्र के व्यापारिक सम्बन्धों की जानकारी प्रदान करते हैं। इनमें से एक मार्ग असम–बर्मा–यूनान का मार्ग था और दूसरा मार्ग नेपाल से तिब्बत होता हुआ चीन को जाता था। चांग–कियान ने यह स्पष्ट किया है कि द्वितीय शताब्दी ई॰ पू॰ में दक्षिण–पश्चिम चीन की वस्तुएं, उत्तर भारत से होकर बैक्ट्रिया को पहुंचती थी।[12]

तक्षशिला :

उत्तर–पश्चिम भारत में तक्षशिला भी व्यापार कला एवं शिक्षा का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। यह गांधार जनपद की राजधानी था। इस नगर के विषय में यह मान्यता है कि तक्षशिला की स्थापना भगवान राम के भाई भरत के पुत्र तक्षक ने की थी। यह पश्चिमी पंजाब के रावलपिंडी जिले में स्थित था। कनिंघम के अनुसार, तक्षशिला नगर के विस्तृत भग्नावशेष आधुनिक शाहढेरी के समीप काल का सराय के लगभग दो कि॰ मी॰ उत्तर–पूर्व में स्थित है, यहां से 55 स्तूपों के प्रमाण प्राप्त हुये।[13] मौर्य शासन में यह नगर उनके उत्तर–पश्चिम प्रान्त की राजधानी थी। सर जॉन मार्शल ने तक्षशिला में मौर्य शासकों द्वारा किये गये कार्यों पर प्रकाश डालते हुए बताया है कि ''मौर्य काल में तक्षशिला में व्यापारिक मार्गों के निर्माण पर बल दिया गया तथा उन्हें चोर डाकुओं से सुरक्षित किया गया.... इस काल में नाप – तौल का सही अनुपात निर्धारित किया गया तथा इस मुद्रा को राजकीय टकसाल से जारी किया गया, जिसके द्वारा साम्राज्य के विभिन्न भागों में व्यापार और वाणिज्य की सुविधा हुई।[14]

जातकों में तक्षशिला के कश्मीर, वाराणासी, विदेह और भारत के अन्य महत्वपूर्ण नगरों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों का वर्णन मिलता है।[15] तक्षशिला अपने अनुपम भवनों के लिये संगमरमर और बहुमूल्य लकड़ी दूसरे भागों से आयात करता था।[16] अपनी भौगोलिक स्थिति के कारण यहां तीन महत्वपूर्ण मार्ग आकर मिलते थे। इनमें से प्रथम मार्ग, जिसे मैगस्थनीज ने 'महापथ' कहा है, जो पाटलीपुत्र से उत्तर–पश्चिम को जाता था। द्वितीय मार्ग, पश्चिमी एशिया से बैक्ट्रिया, कपिशा और पुष्कलावती से होता हुआ ओहिंद नामक स्थान पर सिन्धु नदी को पार कर तक्षशिला तक पहुंचता था। तीसरा मार्ग, मध्य एशिया से आरम्भ होकर कश्मीर को पार करके, श्रीनगर घाटी से तक्षशिला को पहुंचता था। वस्तुतः तक्षशिला भारत का मुख्य द्वार था, जो भारत को व्यापारिक रूप से मध्य एशिया और पश्चिमी एशिया से जोड़ता था, परन्तु इन मार्गों के महत्व को पतन होने के साथ ही तक्षशिला ने भी उत्तर और पश्चिमी देशों के साथ अपना व्यापारिक महत्व खो दिया। इस नगर की आर्थिक स्मृद्धि का वर्णन करते हुये सर जॉन मार्शल ने अपना मत व्यक्त किया है कि सुरक्षा के प्राकृतिक साधन, भूमि की उर्वरता तथा प्राचीन व्यापारिक मार्गों के साथ इसके घनिष्ठ सम्बन्ध इसके आर्थिक विकास में सहायक सिद्ध हुये होगें।[17]

उज्जयिनी :

उज्जयिनी चर्मवती (चबल) नदी की एक सहायक नदी शिप्रा के तट पर स्थित था और उसकी पहचान मध्य–प्रदेश के आधुनिक उज्जैन से की जाती है।[18] मौर्य युग में उज्जयिनी मौर्य सम्राटों के पश्चिमी प्रान्त की राजधानी थी। सम्राट अशोक के अभिलेख में उल्लेख मिलता है–'उजेनितेवि च कुमोल'[19] अशोक के पुत्र राजकुमार कुणाल को यहां का शासक नियुक्त किया गया था, अतः इसे कुणालनगर के नाम से भी जाना जाता था।[20]

उज्जयिनी दो मुख्य मार्गों के मिलन स्थल पर स्थित था। इनमें से एक मार्ग भरूकच्छ–कौशाम्बी के मार्ग से पाटलीपुत्र को जाता था और दूसरा मार्ग दक्षिण को जाता था। इस प्रकार उज्जयिनी उत्तर में कौशाम्बी, साकेत और श्रावस्ती आदि नगरों से तथा दक्षिण में माहिष्मती और प्रतिष्ठान इत्यादि नगरों से सम्बन्धित था। इस प्रकार उज्जयिनी, उत्तर–पश्चिमी भारत, गंगा घाटी, दक्षिणी–पश्चिमी भारत को आपस में जोड़ता था तथा इससे व्यापार को भी बहुत प्रोत्साहन मिला। एक मार्ग उज्जियनी से वाराणसी को भी जाता था। पश्चिम में शिक्षा, वाणिज्य और व्यापार के क्षेत्र में उज्जयिनी की स्थिति ठीक वैसी ही थी, जैसी उत्तरी भारत में तक्षशिला की थी।

इन नगरों के अतिरिक्त सुवर्णगिरि (दक्षिण प्रांत की राजधानी) और तोसाली (कलिंग प्रान्त की राजधानी) भी मौर्य कालीन राजधानी नगर थे, जो उस समय व्यापार का प्रमुख केन्द्र थे। ये नगर भी व्यापारिक मार्गों के द्वारा दूसरे अन्य केन्द्रों से जुड़े हुये थे। सुवर्णगिरि दक्षिण भारत में स्थित था। हुल्श ने इसे मास्की के दक्षिण एवं विजयनगर के अवशेषों के उत्तर में स्थित मैसूर में कनकगिरि से समीकृत किया गया है। कलिंग (तोसाली) पूर्वी समुद्री तट पर स्थित व्यापारिक केन्द्र था। बोगार्ड लेविन व्यापारिक कारण को ही कलिंग युद्ध का कारण माना जाता है। क्योंकि यह बंगाल और श्रीलंका तथा पूर्वीद्वीप समूह के मध्य में था, अतः इससे होकर महत्वपूर्ण व्यापार होता था।[21]

उत्तर–पश्चिमी भारत के नगर :

उत्तर–पश्चिमी भारत मौर्य काल में एक अलग प्रान्त था, जिसकी राजधानी तक्षशिला थी। उस समय उत्तर–पश्चिमी भारत में तक्षशिला के अतिरिक्त कईं अन्य महत्वपूर्ण व्यापारिक नगर विद्यमान थे, जो देशी और विदेशी व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे।

पुष्कलावती :

पुष्कलावती की पहचान स्वात एवं काबुल नदी के संगम से थोड़ा पहले स्थित आधुनिक चारसदा नामक स्थान से की गयी है।[22] जैन साहित्य में इसे पुष्करावती कहा गया है।

पुष्कलावती प्रसिद्ध भारतीय व्यापारिक मार्ग उत्तरापथ पर स्थित वह प्रथम नगर था, जिस कारण से इसका उदय एवं विकास एक अच्छे व्यापारिक केन्द्र के रूप में हुआ। व्यापारिक दृष्टि से पुष्कलावती की भौगोलिक स्थिति बहुत उपयुक्त थी, क्योंकि यह उस समय के महत्वपूर्ण–व्यापारिक स्थल मार्गों के मिलन स्थल पर स्थित था और जिन्हें कईं नदी मार्गों का सहयोग भी प्राप्त

था। पुष्कलावती का उदय यूनानी साम्राज्य के एक नगर के रूप में हुआ था। यह गांधार और बैक्ट्रिया के मध्य एक आदान–प्रदान के केन्द्र के रूप में विकसित हुआ। कपिशा के मार्ग से पुष्कलावती और बैक्ट्रिया के मध्य विकसित व्यापार किया जाता था। इस मार्ग के द्वारा चांदी का निर्यात भारत में आसानी से होता था। परवर्ती ग्रन्थ पेरिप्लस के अनुसार, पुष्कलावती भी व्यापारिक वस्तुयें बाहर के देशों को निर्यात करने के लिये तक्षशिला–ओजेन–बेरीगाजा (तक्षशिला–उज्जयिनी–भरूकच्छ) मार्ग से भेजी जाती थी।[23]

पाली साहित्य तथा अर्थशास्त्र से भी यह पता चलता है कि यह क्षेत्र कम्बोज के घोड़ों के लिये बहुत प्रसिद्ध था। इससे यह पता चलता है कि पुष्कलावती पश्चिमी सिन्धु के क्षेत्र में स्थित एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था, जो घोड़ों के व्यापार के लिये प्रसिद्ध था।[24]

ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से भी ज्ञात होता है कि उसके आगमन के समय पुष्कलावती समृद्ध नगर था। उसके अनुसार, पुष्कलावती की परिधि लगभग तीन मील थी तथा इस समृद्ध नगर के निवासी धन–धान्य से सम्पन्न थे। नगर के पश्चिम द्वार पर एक देव–मन्दिर था, जिसमें स्फाटिक निर्मित मूर्ति प्रतिष्ठित थी। इसके उपकण्ठ पर सम्राट अशोक के द्वारा निर्मित स्तूप ह्वेनसांग के समय में भी विद्यमान था।[25] ह्वेनसांग ने इस क्षेत्र की कृषि सम्पदा का वर्णन करते हुए लिखा है कि यह क्षेत्र दालों, फल–फूलों और गन्ने के लिये प्रसिद्ध था।[26]

शाकल :

यह उत्तर–पश्चिमी भारत का एक प्रसिद्ध नगर था। कुछ विद्वानों ने इसे शाक द्वीप की प्रसिद्ध नगरी माना है। शाकल की पहचान फ्लीट महोदय ने पाकिस्तान में स्थित आधुनिक स्यालकोट से की है।[27] ब्राहमण ग्रन्थों में इसे 'शाकल' बौद्ध साहित्य में 'सागल' और यूनानी लेखों में 'सङ्गल' कहा गया है। यह नगर प्राचीन काल में मद्र देश की राजधानी था।[28] परवर्ती ग्रन्थ मिलिन्दपन्हों में इसे एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र कहा गया है। सम्भवतः दासियों के क्रय–विक्रय के लिये यह एक महत्वपूर्ण व्यापारिक मण्डी था। यहां से प्राचीन विश्व के सभी स्थलों को इन दासियों का निर्यात होता था।[29] पालि–साहित्य के अनुसार, यह नगरी अपनी सुन्दर स्त्रियों के लिये भी प्रसिद्ध थी। शाकल में कईं महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्ग भी थे, जिनके द्वारा अन्य व्यापारिक नगरों से व्यापार किया जाता था। ताम्रलिप्ति–काशी–तक्षशिला मार्ग और वैशाली–कुशीनगर–आहिच्छग–तक्षशिला मार्ग शाकल में आकर मिलते थे। एक अन्य मार्ग रोरूक (सौवीर) से आकर भी यहां पर मिलता था।[30] यह नगर सुदूर पश्चिम में व्यापार करने के लिये भी एक महत्वपूर्ण केन्द्र था।

उत्तरी–भारत के नगर :

मौर्य काल में उत्तरी भारत में अनेक व्यापारिक नगर स्थित थे, जो आपस में विभिन्न मार्गों द्वारा जुड़े हुये थे। ये नगर देशी और विदेशी व्यापार के प्रसिद्ध केन्द्र थे। उस समय उत्तरी भारत में निम्नलिखित व्यापारिक नगर थे।

मथुरा :

प्राचीन भारत के व्यापारिक नगरों में मथुरा का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। इसका प्राचीन नाम मधुबन था, जो सम्भवतः मधुदैव्य के नाम पर पड़ा था। पाणिनि ने अष्टाध्यायी में मथुरा का उल्लेख किया है।[31] मथुरा को मेथोरा और मृदुरा आदि नामों से भी जाना जाता था।[32] छठी शताब्दी ई॰ पू॰ में यह नगर शूरसेन महाजनपद की राजधानी था। मथुरा यमुना नदी के दाहिने तट पर इन्द्रप्रस्थ और कौशाम्बी के बीच स्थित था। यथार्थ में यह उत्तरी मथुरा थी, जिसे आधुनिक मथुरा नगर से पांच मील दक्षिण–पश्चिम में स्थित महोली से समीकृत किया गया है।[33] यूनानी लेखक मथुरा को मेथोरा कहते थे। सम्राट अशोक ने मथुरा में यमुना नदी के तट पर विशाल स्तूपों का निर्माण कराया था। जब चीनी यात्री ह्वेनसांग सातवीं शताब्दी में मथुरा आया तो तब उसने सम्राट अशोक द्वारा बनवाये तीन स्तूपों का दर्शन किया था। उन स्तूपों का उल्लेख ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरण में दिया है।[34]

अंगुतरनिकाय में मथुरा नगरी के पांच दोषों का वर्णन मिलता है :–

1 इसकी सड़के समतल नहीं थी।

2 कच्ची होने के कारण इन सड़कों में निरन्तर धूल जमी रहती थी।

3 इसके अन्दर भयंकर कुत्ते रहते थे।

4 यहां पर कभी–कभी जंगली जानवर चले आते थे।

5 यहां पर शिक्षा बहुत कठिनता से प्राप्त होती थी।[35]

मथुरा, पाटलीपुत्र से तक्षशिला को जाने वाले उत्तरापथ पर स्थित एक महत्वपूर्ण समृद्धशाली नगर था। कईं बड़े व्यापारिक मार्ग मथुरा से होकर गुजरते थे। तक्षशिला से पाटलीपुत्र की ओर तथा दक्षिण में विदिशा और उज्जयिनी की ओर जाने वाली सड़कें भी मथुरा से होकर गुजरती थी।[36] मथुरा एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगरी थी। मथुरा के वणिक बड़ी–बड़ी नावों में अपने माल को भर कर विक्रय के लिये ले जाया करते थे, और पाटलीपुत्र से भी व्यापारिक वस्तुओं से भरी नावें मथुरा आया करती थी। इससे यह पता चलता है कि इन दोनों नगरों के मध्य नावों का एक पुल बंधा हुआ था।[37] इसके अलावा इन्द्रप्रस्थ, श्रावस्ती, कौशाम्बी आदि प्रसिद्ध व्यापारिक नगरों के साथ भी मथुरा के व्यापारिक सम्बन्ध थे। श्रावस्ती से मथुरा का पथ वेरंज नामक एक महत्वपूर्ण स्थान से होकर गुजरता था।[38] पश्चिमी भारत के वेरगाजा (भडौंच), बर्बरिकम और पाटल से भी कईं मार्ग मथुरा में आकर मिलते थे। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में मथुरा में बने सूती वस्त्रों का वर्णन करते हुए लिखा है कि मथुरा में बने सूती वस्त्र गुणवत्ता में श्रेष्ठ है।[39] इससे यह पता चलता है कि मौर्य काल में मथुरा नगरी सूती वस्त्र उद्योग का प्रमुख केन्द्र था।

कौशाम्बी :

कौशाम्बी प्राचीन वंग प्रदेश की राजधानी थी, जिसकी गणना दीघनिकाय के महापरिनिब्बानसुत तथा महासुदस्सनसुत्त में महात्मा बुद्ध के समय के उत्तरी भारत के प्रसिद्ध छः नगरों में की गयी है।[40] कौशाम्बी का प्रथम उल्लेख उत्तरवैदिक काल में मिलता है। शतपथ ब्राहम्ण में 'प्रोतिकौसुरूविन्दि' को कौशाम्बेय अर्थात कौशाम्बी का निवासी कहा गया है।[41] कौशाम्बी की पहचान कनिंघम महोदय ने इलाहाबाद से लगभग 50 कि॰ मी॰ दक्षिण–पश्चिम में स्थित आधुनिक कोसम नामक ग्राम से की है।[42] यमुना के तट पर स्थित होने के कारण यहां व्यापार और वाणिज्य की बहुत उन्नति हुई, इसलिये इसे लोग 'वत्स पत्तन' कहते थे। छठी शताब्दी ई॰ पू॰ में इसके म्यांमार के साथ भी व्यापारिक सम्बन्ध थे।[43] कौशाम्बी से यमुना नदी के द्वारा प्रयाग–प्रतिष्ठान तक तथा उससे भी आगे गंगा नदी के द्वारा वाराणसी, पाटलीपुत्र और ताम्रलिप्ति तक आवागमन होता था।

अशोक का द्वितीय स्तम्भ लेख आज भी कौशाम्बी में स्थित है, जिसमें अशोक की पत्नी कारूवाकी का दिया हुआ दान अंकित है, जिस धन से वहां पर बौद्ध धर्म के मठ, विहार तथा उपवन बने थे।[44] इससे यह प्रमाणित होता है कि उस समय यह नगर बौद्ध धर्म का तीर्थ बन गया था। कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में कौशाम्बी के वस्त्र उद्योग का वर्णन भी किया है। उसने वत्स कौशाम्बी के सूती वस्त्रों को श्रेष्ठ बताया है।[45]

भौगोलिक स्थिति के कारण से भी कौशाम्बी नगर की स्थिति बहुत उन्नत थी, क्योंकि यह नगर महत्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों के मिलन स्थल के केन्द्र बिन्दु पर स्थित था। बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार, कौशाम्बी उज्जयिनी से राजगृह जाने वाले व्यापारिक मार्ग पर स्थित था।[46] विनयपिटक से ज्ञात होता है कि कौशाम्बी तथा श्रावस्ती सुप्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग से सम्बन्धित थे।[47] सुप्रसिद्ध व्यापारिक मार्गों द्वारा अन्य महत्वपूर्ण व्यापारिक नगरों से सम्बद्ध होने के कारण मौर्य काल में कौशाम्बी उत्तर–पूर्वी भारत में आयात और निर्यात का एक महान व्यापारिक केन्द्र बन गंया था।

श्रावस्ती :

श्रावस्ती दक्षिणापथ पर स्थित एक प्रसिद्ध व्यापारिक और धार्मिक केन्द्र था। इसकी पहचान उत्तरप्रदेश के गोंडा और बहराइच जिलों में स्थित आधुनिक सहेत–महेत के रूप में की गई है।[48] गौतम बुद्ध के समय श्रावस्ती की गणना भारत के छः महानगरों में की जाती थी। महात्मा बुद्ध के जीवनकाल में श्रावस्ती (सावत्थी) कौशल जनपद की राजधानी था।[49] श्रावस्ती को चन्द्रिकापुरी और चन्द्रपुरी इत्यादि नामों से भी जाना जाता था। यह नगर भारत के प्रसिद्ध व्यापारिक नगरों तथा बन्दरगाहों से व्यापारिक मार्गों द्वारा जुड़ा हुआ था।[50] श्रावस्ती की समृद्धि का प्रमुख कारण यह था कि यहां पर तीन प्रमुख व्यापारिक मार्ग आकर मिलते थे। श्रावस्ती से एक मार्ग राजगृह को जाता था, जो कि एक सुविदित और प्रसिद्ध मार्ग था। दिव्यावदान में श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले मार्ग का भी उल्लेख मिलता है। इसके अनुसार, अपने शिष्यों के साथ यात्रा करते समय भगवान बुद्ध द्वारा श्रावस्ती के व्यापारियों को छः बार इस मार्ग पर डाकुओं के चंगुल से बचाया था। इसी ग्रन्थ में यह भी वर्णन मिलता है कि श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले यात्रियों को मार्ग में गंगा नदी पार करनी पड़ती थी।[51] जातकों के अनुसार, अनाथपिण्डक के साथ श्रावस्ती से दक्षिण–पूर्व की ओर जाते थे और वहां से वापस लौटते थे। एक अन्य महत्वपूर्ण मार्ग श्रावस्ती से दक्षिणापथ के प्रतिष्ठान तक जाता था, जिस पर मार्ग में साकेत, कौशाम्बी, विदिशा, गोनद्ध, उज्जयिनी और माहिष्मति इत्यादि छः पड़ाव पडते थे।[52] बौद्ध धर्म के लिये यह अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था, क्योंकि महात्मा बुद्ध ने अपने जीवन के अन्तिम 25 वर्षों के वर्षावास श्रावस्ती में ही व्यतीत किये थे और उन्होंने अपना अधिकांश समय भी यहीं पर बिताया था।[53] बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध विहार जेतवन और पूर्वाराम विहार भी यहां पर स्थित थे।

वाराणसी :

वाराणसी धर्म, शिक्षा और व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान रहा है। वरूणा और असी नामक नदियों के मध्य स्थित होने के कारण इसका नाम वाराणसी पड़ गया।[54] वाराणसी के दक्षिण–पूर्व में गंगा, उत्तर–पूर्व में वरूणा और पश्चिम में असी नामक नदियां बहती हैं। बौद्ध ग्रन्थों में वाराणसी का उल्लेख काशी जनपद की राजधानी के रूप में अनेक स्थानों पर हुआ है।[55] महात्मा बुद्ध के समय में वाराणसी उत्तरी भारत के प्रसिद्ध छः नगरों में से एक था। जातकों में वाराणसी नगर का विस्तार 12 योजना बताया गया है – 'द्वादसयोजनिकंल वाराणसीनगरं'।[56]

उत्तरापथ पर स्थित यह एक समृद्धशाली व्यापारिक नगर स्थलमार्गों और जलमार्गों के द्वारा भारत के अन्य महत्वपूर्ण व्यापारिक नगरों से जुड़ा हुआ था। राजगृह से तक्षशिला होकर मध्य एशिया तथा चीन को जाने वाला व्यापारिक मार्ग वाराणसी से होकर ही जाता था। मौर्य काल में व्यापार एवं शिक्षा दोनों के लिये ही वाराणसी और तक्षशिला के मध्य मनुष्यों का आवागमन होता रहता था। काशी से वेरंजा को दो मार्ग जाते थे – एक मार्ग, सोरेय्य होकर जाता था और दूसरा मार्ग, प्रयाग में गंगा–नदी को पार करके काशी तक पहुंचता था और वहीं से यह मार्ग वैशाली को जाता था। काशी से होकर एक मार्ग कौशाम्बी विदिशा, उज्जयिनी और प्रतिष्ठान को जोड़ता था। वाराणसी से श्रावस्ती को भी एक मार्ग जाता था। वाराणसी से राजगृह और श्रावस्ती जाने वाले मार्गों का विनयपिटक में अनेक जगह उल्लेख मिलता है।[57] जातकों में वाराणसी से नदियों द्वारा व्यापारिक यातायात का वर्णन मिलता है। कौशाम्बी से काशी तक नावें चला करती थी। वैशाली से भी नदी के द्वारा पाटलीपुत्र होते हुये वाराणसी तक लोग आते–जाते थे।[58] इसी प्रकार वाराणसी से प्रयाग तक गंगा और फिर यमुना नदी के द्वारा कौशाम्बी तक नावों का आवागमन होता था और इन दोनों स्थानों की दूरी 30 योजन थी।[59]

काशी अपने सुन्दर और बहुमूल्य सूती तथा रेशमी वस्त्रों के लिये प्रसिद्ध रहा है। अर्थशास्त्र में काशी के सुन्दर वस्त्रों का उल्लेख किया है। कौटिल्य के अनुसार, काशी के सूती वस्त्र (क्षौम) अपनी गुणवत्ता के कारण सबसे अच्छे होते हैं।[60] बौद्ध साहित्य में भी वाराणसी के वस्त्रों के लिये 'काशिक वस्त्र' 'काशी–कुत्रम्, तथा 'काशीय' शब्दों का उल्लेख मिलता है। संयुक्तनिकाय में भी

वर्णन मिलता है कि सभी बुने हुये वस्त्रों में काशी का बना हुआ वस्त्र सर्वश्रेष्ठ होता है।[61] काशी के 'काशिक' अथवा वाराणसी के 'बाराणसेय्यक' नामक दोनों ओर से चमकदार दिखने वाले सुन्दर वस्त्रों का उल्लेख हमें दीघनिकाय में मिलता है। वैसे यहां पर सूती, ऊनी तथा रेशमी तीनों प्रकार के वस्त्र बनते थे। नाप में बराबर होने पर भी काशी के वस्त्रों का मूल्य मथुरा के वस्त्रों के मूल्य से अधिक होता था।[62] काष्ठ के व्यवसाय के लिये भी वाराणसी बहुत प्रसिद्ध था। वाराणसी में उत्तरापथ के घोड़ों का एक बड़ा बाजार लगता था। उत्तरापथ के माध्यम से उत्तर–पश्चिमी भारत से घोड़े बिक्री के लिये वाराणसी आते थे तथा सैंधव घोड़े भी वाराणसी में विक्रय के लिये आते थे।[63] इसके अतिरिक्त हिमालय क्षेत्र से हाथी दांत तथा विभिन्न केन्द्रों से स्वर्ण, हीरे जवाहारात, रत्न आदि पदार्थ वाराणसी में बिक्री के लिये लाये जाते थे।[64] इसके अलावा इत्र, सुगन्धित तेल, चन्दन इत्यादि के लिये भी काशी प्रसिद्ध केन्द्र रहा है। काशिक चन्दन का उल्लेख जातकों में भी आया है। वाराणसी में हाथी दांत का व्यवसाय भी किया जाता था।[65]

नाना प्रकार के व्यवसायों, उद्योगों तथा कलाओं से इस नगर का सम्बन्ध प्राचीन काल से रहा है। ह्वेनसांग के अनुसार, यहां के बाजारों की दुकानों पर सुन्दर वस्तुयें विक्रय के लिये रखी जाती थी। वाराणसी के बुनकर महीन कपड़ा बीनने के दक्ष थे यहां के राजकुल के सदस्य, मन्त्री तथा रानियां रेशमी वस्त्रों की शौकीन थी। पतंजलि ने लिखा है कि काशी के रेशमी वस्त्र बहुत महंगे हुआ करते थे, यहां के ऊनी कम्बल भी बहुत प्रसिद्ध थे। वाराणसी व्यापार के साथ–साथ धर्म और शिक्षा का भी प्रमुख केन्द्र रहा है। मौर्य सम्राट अशोक ने यहां पर स्थित सारनाथ से एक स्तूप का निर्माण कराया था। असम्भवतः यह ठीक उसी स्थान पर बनाया गया था, जहां पर गौतम बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था।[66]

वैशाली :

वैशाली की पहचान कनिंघम ने बिहार के वर्तमान वैशाली स्थित आधुनिक बसाढ़ नामक गांव से की है।[67] इतिहास से यह लिच्छवि राजाओं की राजधानी और वज्जि संघ के मुख्यालय के रूप में प्रसिद्ध थी। मौर्य काल में वैशाली एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगरों को जाते थे। विनयपिटक से यह वर्णन मिलता है कि वैशाली से एक मार्ग राजगृह को तथा दूसरा कपिलवस्तु को जाता था।[68] यहीं से एक अन्य मार्ग जो ताम्रलिप्ति बन्दरगाह से वाराणसी को जाता था, वह वैशाली से होकर जाता था। द्वितीय शताब्दी ई॰ पू॰ तक वैशाली एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर बन चुका था, और इसके उत्तरी भारत के प्रसिद्ध व्यापारिक नगरों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित थे। वैशाली के कृषि उत्पाद भी बहुत उन्नत थे। महावस्तु में आप को यहां की महत्वपूर्ण व्यापारिक उपज बताया गया है। यहां के उत्खन्न से परवर्ती काल की बहुत–सी मिट्टी की मुहरें प्राप्त हुई है, जो हमें वैशाली के सतत व्यापारिक सम्बन्धों की जानकारी देती है।[69]

चम्पा :

कनिंघम महोदय ने चम्पा नगरी की पहचान बिहार के भागलपुर जिले के आधुनिक चम्पापुर और चम्पा नगर नामक दो गाँवों से की है, जो कि भागलपुर से 40 कि॰ मी॰ पूर्व में स्थित है। चम्पा प्राचीन काल में अंग जनपद की राजधानी थी, जो चम्पा नदी के तट पर तथा गंगा नदी के दक्षिण की ओर स्थित थी।[70] गंगा नदी चम्पा को भारत के कई महत्वपूर्ण बन्दरगाहों से जोड़ती थी तथा चम्पा नदी अंग और मगध राज्य के बीच सीमा का निर्धारित करती थी।[71] जातकों के विवरण से पता चलता है कि चम्पा नगर पारिखा और प्राचीर से परिवेष्ठित था। यह मौर्य काल में व्यापार और वाणिज्य का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। यहां से व्यापारी व्यापार के लिये भारत के विभिन्न भागों में और भारत से बाहर भी जाते थे। एक स्थल मार्ग द्वारा चम्पा मिथिला से भी जुड़ा हुआ था। जातकों में चम्पा की मिथिला से दूरी 60 योजन बताई गयी है। यहां व्यापारी सुवर्णभूमि तक व्यापार के लिये जाया करते थे।[72] फाह्यान जब भारत आया तो उसने चम्पा नगरी का भी भ्रमण किया, वह पाटलीपुत्र से गंगा के मार्ग द्वारा चम्पा पहुंचा था। फाह्यान ने पाटलीपुत्र से 18 योजन पूर्व दिशा में गंगा के दक्षिण तट पर चम्पा को स्थित देखा था।[73]

विदिशा :

मौर्य काल में विदिशा एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था। सम्भवतः इसे 'विदिशा' (वि+दिशा) कहा जाता होगा।[74] पाटलीपुत्र से उज्जयिनी तथा श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले स्थल मार्ग विदिशा से ही होकर जाते थे। विदिशा पाटलीपुत्र से 50 योजन की दूरी पर स्थित था।[75] उज्जयिनी का गवर्नर नियुक्त किये जाने पर उज्जायिनी जाते समय सम्राट अशोक विदिशा में रूके थे और उन्होंने वहां विदिशा के एक प्रमुख व्यापारी की पुत्री देवी से विवाह किया था, जिससे पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा उत्पन्न हुये थे। विदिशा उस समय हाथीदांत के व्यवसाय का प्रमुख केन्द्र था और यहीं से हाथी दांत की वस्तुयें देश के दूसरे भागों में बिक्री के लिये ले जायी जाती थी। विदिशा का अन्वेषण 1875 से 1877 ई॰ में कनिंघम महोदय ने [76] व 1908–1909 ई॰ में एच॰ एच॰ लेख ने तथा 1913–15 ई॰ में भण्डारकर महोदय ने किया था। परन्तु लेख व भण्डारकर महोदय के परिणाम पर्याप्त नहीं थे। अतः 1963 ई॰ में महेश्वरी दयाल खरे ने यहां पर विस्तृत उत्खन्न करवाया। उन्होंने विदिशा को सात कालों में विभाजित किया, इनमें से द्वितीय काल मौर्य काल से सम्बन्धित था।[77] विदिशा के उत्खन्न से अनेक पुरावशेष प्राप्त हुये हैं, जिनमें अनेक आहत सिक्के प्राप्त हुये हैं, जिनमें से एक सिक्के पर मौर्य कालीन ब्राहमी में वेदस लेख लिखा हुआ है। विदिशा व्यापार के साथ–साथ उस समय धर्म का भी प्रमुख केन्द्र था। मौर्यकाल में यह बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र था।[78]

दक्षिणापथ के नगर :

उस समय दक्षिणापथ पर कई महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र थे, जो स्थल और जलमार्गों के द्वारा विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों से जुड़े हुये थे। उस समय दक्षिणापथ पर निम्नलिखित व्यापारिक नगर स्थित थे।

माहिष्मति :

माहिष्मती की पहचान नर्मदा नदी के दाहिने तट पर स्थित मध्य–प्रदेश के खरगौन जिले में स्थित माहेश्वर नामक स्थान से की गयी है। पालि साहित्य में माहिष्मति को माहिस्सती कहा गया है।[79] माहिष्मति दक्षिणापथ पर उज्जयिनी और प्रतिष्ठान के मध्य स्थित थी। माहिष्मति प्राचीन दक्षिण अवन्ति की राजधानी थी, जो विभिन्न व्यापार मार्गों के द्वारा देश के विभिन्न भागों से जुड़ी थी। माहिष्मति विदेशी मदिरा की बिक्री के लिये एक प्रसिद्ध बाजार था। देश के विभिन्न भागों से यहां पर व्यापारी व्यापार के लिये आया करते थे।[80]

प्रतिष्ठान :

प्रतिष्ठान की पहचान महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले के गोदावरी के तट पर स्थित आधुनिक पैठन के रूप में की गयी है।[81] यह भारत का एक प्रमुख नगर था, जहां पर दक्षिण भारत के विभिन्न व्यापारिक नगर एक–दूसरे से जुड़ते थे। यह दक्षिणी भारत का एक महत्वपूर्ण व्यापारिक केन्द्र था। यह विशेष रूप से मिस्र को इत्र निर्यात करता था। परवर्ती ग्रन्थ पेरिप्लस के अनुसार, यह वस्त्र उद्योग का एक प्रसिद्ध केन्द्र था और यह बेरीगाजा भड़ौच के दक्षिण में 20 दिनों की यात्रा की दूरी पर स्थित था।[82]

पण्यपत्तन :

प्राचीन ग्रन्थों में पत्तन शब्द समुद्री बन्दरगाह के अर्थ के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अर्थशास्त्र में बन्दरगाह को 'पण्यपत्तन' कहा गया है। भारत का समुद्री तट बहुत विशाल है, जिसकी लम्बाई 5600 कि॰ मी॰ है। भारत के पश्चिमी समुद्र तट और पूर्वी समुद्र तट पर विश्व प्रसिद्ध अनेक महत्वपूर्ण बन्दरगाह थे, जिनके माध्यम से मौर्यकाल में आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार का व्यापार किया जाता था। लगभग सभी प्रमुख व्यापारिक नगर स्थल मार्गों अथवा जलमार्गों द्वारा इन बन्दरगाहों से जुड़े हुये थे, जिनके माध्यम से यहां पर व्यापार के लिये माल लाया और ले जाया जाता था। भारत के पूर्वी और पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित बन्दरगाहों पर व्यापारियों के सामान से लदे हुये जहाज विदेशों से आते थे और यहीं से विदेशों को जाया करते थे। इस काल के बन्दरगाहों को भौगोलिक क्षेत्रों के आधार पर विभाजित किया जा सकता है :–

1 सिन्धु क्षेत्र में स्थित बन्दरगाह
2 पश्चिमी समुद्र तट के बन्दरगाह
3 पूर्वी समुद्र तट के बन्दरगाह[83]

सिन्धु क्षेत्र में स्थित बन्दरगाह :

मौर्य काल में सिन्ध क्षेत्र में निम्नलिखित महत्वपूर्ण बन्दरगाह स्थित थे, जिसके माध्यम से उस समय विदेशों के साथ व्यापार किया जाता था।

पाटल :

पाटल निम्न सिन्धु घाटी में स्थित एक प्राकृतिक पतन था, जिसके माध्यम से भारत का विदेशों के साथ आयात–निर्यात किया जाता था। सिकन्दर ने पाटल नामक स्थान पर एक बन्दरगाह का निर्माण कराया था और वहां पर अपनी एक बस्ती भी बसायी थी, इसी कारण से उसे सिकन्दर का स्वर्ग के नाम से जाना जाता है।[84] प्लिनी ने अपने विवरण में लिखा है कि यहां पर सबसे पहली बार पश्चिमी जहाजों का सम्पर्क हुआ। टार्न महोदय के अनुसार, मिर्च का निर्यात मुख्य रूप से इसी बन्दरगाह के माध्यम से किया जाता था।[85] दक्षिणी भारत से एक स्थल मार्ग उज्जयिनी से होता हुआ नदी के मुहाने पर स्थित पाटल के बन्दरगाह तक पहुंचता था और इसी मार्ग के द्वारा दक्षिण भारत से यहां पर मिर्च लाई जाती थी, जिससे बाद में विदेशों में निर्यात के लिये भेजा जाता था।[86]

बर्बरिकम :

बर्बरिकम सिन्धु नदी के मुहाने पर स्थित पश्चिमी समुद्र–तट पर मौर्य कालीन एक प्रसिद्ध पोताश्रय था, जिसकी पहचान वी॰ ए॰ स्मिथ ने आधुनिक समराह नामक स्थान से की है।[87] एस॰ एन॰ मजूमदार के विचार में संस्कृत साहित्य में इस बन्दरगाह के दो नाम दिये गये हैं, पहला अलकंदा (अलक्जैण्ड्रिया–अलक्जेण्डर के नाम पर) और दूसरा बर्बरा (जो कि पुराणों के अनुसार पश्चिमी क्षेत्र में स्थित एक स्थान था) वास्तव में बर्बरा का अर्थ पेरिप्लस के बर्बरिकम और टॉलमी के बर्बरी से ही है। पेरिप्लस के अनुसार, बर्बरिकम सिन्धु नदी की सात शाखाओं के डेल्टा पर स्थित था।[88] टॉलमी के अनुसार भी बर्बरी बन्दरगाह सिन्धु नदी के पास में ही स्थित था। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में बर्बर देश की स्त्रोतसी नदी का उल्लेख मिलता है। स्त्रोतसी मोतियों तथा अलकंदा मूंगे के लिये प्रसिद्ध स्त्रोत क्षेत्र थे। ये क्षेत्र स्त्रोतसी नदी के तट पर स्थित थे।[89] कौटिल्य ने अर्थशास्त्र में मूंगे के दो प्रकारों का वर्णन किया है प्रथम अलकंदक मूंगा, जो सिकन्दरिया से आता था और द्वितीय वैवर्णिका जो यवनद्वीप के पास स्थित विवर्ण महासागर से आता था।[90] व्यापारिक उद्देश्य से बर्बरिकम एक बहुत ही महत्वपूर्ण बन्दरगाह था, क्योंकि सिंध के क्षेत्र में विदेशों से आयात–निर्यात करने के लिये इस बन्दरगाह का प्रयोग मुख्य रूप से किया जाता था। इस बन्दरगाह से व्यापारी फारस की खाड़ी और लालसागर से होते हुये मिस्र तक पहुंच जाते थे तथा उसके बाद भूमध्य सागर और पश्चिम के अन्य सागरों तक चले जाते थे।[91] पेरिप्लस के अनुसार, यह एक प्रसिद्ध वाणिज्य तथा व्यापार का केन्द्र था। बर्बरिकम के बन्दरगाह से काफी मात्रा में महीन एवं कसीदाकारी युक्त क्षौम वस्त्र, पुखराज, मूंगा, लोबान, शीशे तथा चांदी–सोने के बर्तन और बहुमूल्य मदिरा आती थी। इसके अतिरिक्त इस बन्दरगाह से कुष्ठ, गुग्गल, फिरोजा, लाजवर्द, चीनी, सूती कपड़े, रेशम और सूत बाहर भेजे जाते थे। बर्बरिकम से चलकर जहाज भरूकच्छ की ओर जाते थे। एक स्थल महामार्ग पाटलीपुत्र से भरूकच्छ और बर्बरिकम तक जाता था, जिसके द्वारा निर्यात के लिये अनेक वस्तुएं यहां लायी जाती थी तथा पश्चिम से आयी सामग्री देश के आन्तरिक भागों में भेजी जाती थी। इस प्रकार बर्बरिकम मौर्य काल का बहुत ही महत्वपूर्ण पोताश्रय था।[92]

पश्चिमी तट के प्रमुख बन्दरगाह :

भारत का पश्चिमी समुद्र तट बहुत ही महत्वपूर्ण था, क्योंकि यहां पर मौर्य काल में कई महत्वपूर्ण बन्दरगाह थे और ये सभी बन्दरगाह उत्तरी भारत और दक्षिणी–भारत के नगरों से व्यापारिक मार्गों से जुड़े हुये थे।[93] पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित बन्दरगाहों से जहाज व्यापारिक माल मुख्य रूप से पश्चिमी देशों में ले जाते थे। पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित बन्दरगाहों में मुख्य रूप में भरूकच्छ, शूर्पारक, कल्याण, मुजिरिस इत्यादि प्रमुख रहे हैं।[94]

भरूकच्छ :

भरूकच्छ भारत के पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित मौर्य काल का सबसे प्रसिद्ध बन्दरगाह था। भरूकच्छ की पहचान गुजरात में स्थित आधुनिक भड़ौच से की गयी है, जो कि नर्मदा नदी के मुहाने पर स्थित है।[95] भरूकच्छ कई अन्य नामों जैसे–भृगुच्छ, भृगुपुर, भृगुतीर्थ बैरूगाजा, बैरीगाजा तथा बैर्गोसा आदि के नाम से भी प्रसिद्ध रहा था। यह पश्चिमी तट का उस समय का सबसे बड़ा बन्दरगाह था। भृगुकच्छ, भरूकच्छ का संस्कृत रूप है, जिसका अर्थ है उच्च तटीय प्रदेश।[96] यह नगर एक ऊँचे तट पर स्थित था। दिव्यावदान के अनुसार, भरूकच्छ या भृगुकच्छ का नाम रोरूक के राजा (सिंध में स्थित अलोर) के एक मंत्री भीरू के नाम पर पड़ा। यह एक घना बसा हुआ सम्पन्न और समृद्धशाली नगर था।[97] पेरिप्लस के अनुसार, यहां पर विदेशों से मदिरा, सीसा, महीन बहुमूल्य वस्त्र तथा सुवर्ण एवं रजत मुद्रायें मंगाई जाती थी। राजाओं के लिये बहुमूल्य बर्तन, सुन्दर दासियॉ तथा अनुलेप इत्यादि का आयात भड़ौच के बन्दरगाह से ही होता था।[98] तांबा, रांगा, मूंगा, पुखराज, अज्जन तथा सडिखया भी यहां आते थे। यहां से बाहर जाने वाली वस्तुओं में हाथीदांत, रेशमी तथा सूती वस्त्र, मिर्च, बहुमूल्य पत्थर एवं मखमल इत्यादि उल्लेखनीय हैं। यहां से एक व्यापारिक मार्ग उज्जयिनी होता हुआ पाटलीपुत्र को जाता था।[99] उज्जयिनी से यहां पर लोहिता के मलमल तथा अनेक प्रकार के कपड़े आते थे। भरूकच्छ से प्रतिष्ठान तक 20 दिनों की यात्रा का रास्ता था और यहां से 10 दिनों की यात्रा के रास्ते 'तगर' नामक प्रसिद्ध व्यापारिक केन्द्र स्थित था। एक स्थल मार्ग के द्वारा भरूकच्छ माहिष्मति से भी जुड़ा हुआ था।[100] पश्चिम में भरूकच्छ के व्यापारी फारस की खाड़ी तक जाते थे। इस प्रकार से भरूकच्छ मौर्य काल का एक महत्वपूर्ण बन्दरगाह था, जहां पर उत्तरी और दक्षिणी भारत से माल आता था और उसे यहीं से विदेशों में निर्यात किया जाता था।[101]

शूपरिक :

शूपरिक की पहचान महाराष्ट्र में बम्बई से 60 कि॰ मी॰ उत्तर में थाना जिले में स्थित आधुनिक सोपारा से की गई है। इसे सुप्पारक, सोपारक, सोयारग, सोरपारग, और सुप्पारिक इत्यादि नामों से भी उल्लिखित किया गया है।[102] हरिवंश पुराण के अनुसार, राम जमदगम्य नामक एक ऋषि ने शूपरिक नामक नगर की स्थापना की थी। दिव्यावदान तथा शूर्पारक जातक के अनुसार, भारत के पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित इस बन्दरगाह का नाम एक समुद्री व्यापारी के नाम पर पड़ा था।[103] मौर्य काल में यह एक प्रसिद्ध स्थल था। यहां से अशोक का एक लेख भी प्राप्त हुआ है। शूपरिक व्यापार और वाणिज्य का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था, जहां पर व्यापारी अपने व्यापारिक माल को लेकर एकत्रित होते थे।[104] परवर्ती काल में भी यहां से नियमित रूप से भरूकच्छ और सुवर्णभूमि के साथ व्यापार होता था। यह स्थलमार्ग के माध्यम से श्रावस्ती से जुड़ा हुआ था। धम्मपद अट्ठकथा के अनुसार, श्रावस्ती, शूपरिक से 120 योजन की दूरी पर उत्तर–पूर्व में स्थित था। पेरिप्लस में भी सोपारा का उल्लेख किया गया है।[105] इसके अनुसार, पश्चिमी तट पर बेरीगाजा (भरूकच्छ) के पश्चात शूपरिक सबसे प्रसिद्ध बन्दरगाह था। यह घोड़ों के क्रय–विक्रय के लिये एक महत्वपूर्ण व्यापार का केन्द्र था।[106] दीपवंश और महावंश के अनुसार, श्रीलंका का राजा विजय अपने अनुयायियों के साथ श्रीलंका जाते समय भारत के पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित शूपरिक नामक पत्तन पर आये थे।[107] मौर्य काल में भरूकच्छ के पश्चात शूपरिक पश्चिमी समुद्र तट पर स्थित दूसरा महत्वपूर्ण पोताश्रय था। मौर्योत्तर काल में भी शूपरिक पोताश्रय का महत्व काफी समय तक बना रहा।[108]

कल्याण :

मौर्य काल में दक्षिणी भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर महाराष्ट्र में मुम्बई के पास थाना जिले में ही कल्याण नामक एक अन्य महत्वपूर्ण बन्दरगाह स्थित था। यह बन्दरगाह देश के अन्य व्यापारिक नगरों और बन्दरगाहों से व्यापारिक मार्गों द्वारा सम्बन्धित था।[109] यहां देश के आन्तरिक भागों से व्यापारिक सामान उस मार्ग से भेजा जाता था, जो बाद में हैदराबाद में दौलताबाद को जाता था। परवर्ती ग्रन्थ पेरिप्लस में इसे कल्लियेन कहा गया है। इसके अनुसार, यह दक्षिणापथ का एक प्रसिद्ध व्यापारिक नगर था और यहां लंगर डालने वाले विदेशी जहाजों को भड़ौच भेज दिया जाता था, जो इसका समीपवर्ती बन्दरगाह था।[110]

मुजिरिस :

भारत के पश्चिमी समुद्र तट पर पश्चिमी देशों के साथ व्यापार करने के लिये 'मुजिरिस' नामक एक अन्य महत्वपूर्ण बन्दरगाह था, जो आधुनिक कोचीन के पास था। मुजिरिस की पहचान क्रेंगनोर नामक स्थान से की जाती है, जो नेलकिण्डा और त्रावणकोर में कोट्टयम के आस–पास स्थित था।[111] यह टिण्डिस से 80 कि॰ मी॰ तथा एक नदी के मुहाने से 5 कि॰ मी॰ की दूरी पर स्थित था। मुजिरिस बन्दरगाह में अरब और यूनानी व्यापारियों के माल से भरे जहाज खड़े रहते थे। मुजिरिस से बहुत से भारतीय व्यापारी फारस की खाड़ी से मस्कट तक जाया करते थे, जो भारतीय माल का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था।[112] यहां से भारतीय माल असीरिया आदि पश्चिमी देशों में भेजा जाता था तथा यहां से मुख्य रूप से पुखराज, चित्रित क्षौम, मूंगा, रांगा, सीता, महीन कपड़े इत्यादि का आयात किया जाता था तथा काली मिर्च, हाथी दांत, रेशमी कपड़ा, जटामांसी, नीलम और हीरे आदि का निर्यात किया जाता था। इस प्रकार से मुजिरिस भी एक महत्वपूर्ण एवं प्रसिद्ध बन्दरगाह था।[113]

पूर्वी समुद्री तट पर स्थित प्रमुख बन्दरगाह :

मौर्य काल में पश्चिमी समुद्रतट की भांति पूर्वी समुद्र तट पर भी कई महत्वपूर्ण बन्दरगाह स्थित थे, जो उस समय के प्रसिद्ध व्यापारिक नगरों एवं अन्य प्रसिद्ध बन्दरगाहों से जुड़े हुये थे। पूर्वी समुद्र तट पर स्थित बन्दरगाहों से मुख्य रूप से दक्षिणी–पूर्वी देशों, सुवर्ण भूमि एवं चीन आदि देशों से व्यापार किया जाता था।[114] इसके अतिरिक्त यहां से देश के आन्तरिक नगरों से भी व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित थे। मौर्य काल में पूर्वी समुद्र तट पर ताम्रलिप्ति कावेशीपटटनम, कंचनपुर आदि प्रमुख बन्दरगाह थे।[115]

ताम्रलिप्ति बन्दरगाह :

यह नगर बंगाल के समुद्र तट पर गंगा के मुहाने पर स्थित था, इसलिये पुराणों में इसे 'समुद्रतटपुरी' कहते हैं। यह पूर्वी समुद्र तटपर स्थित प्राचीन काल के सभी बन्दरगाहों में सर्वश्रेष्ठ था, क्योंकि प्राचीन काल में यहीं से जावा, सुमात्रा, चीन इत्यादि पूर्वी देशों से व्यापार होता था। इसीलिये वृहत्तर भारत के निर्माण में इससे महत्वपूर्ण योगदान मिला था।[116]

ताम्रलिप्ति का बन्दरगाह मौर्यकाल में पूर्वी समुद्री तट पर स्थित बन्दरगाहों में सर्वप्रमुख था। ताम्रलिप्ति की पहचान पश्चिमी बंगाल के भिदनापुर जिले में रूपनारायण और दुगली के संगम से लगभग 20 कि॰ मी॰ की दूरी पर स्थित आधुनिक तामलुक से की गयी है।[117] ताम्रलिप्ति का विकास पांचवी शताब्दी ई॰ पू॰ में व्यापार और वाणिज्य के केन्द्र के रूप में हुआ, जब यह व्यापारिक मार्गों द्वारा उत्तर भारत के विभिन्न नगरों राजगृह, श्रावस्ती और वाराणसी आदि के साथ सम्पर्क में आया। ताम्रलिप्ति का बन्दरगाह, उत्तरापथ के अन्तिम छोर पर स्थित था।[118] यहीं से समुद्री जहाज विदेशों के लिये जाते थे। ताम्रलिप्ति भारत से दक्षिण–पूर्वी एशिया, चीन और श्रीलंका जाने के लिये मुख्य पोताश्रय था। ताम्रलिप्ति से व्यापारियों के बड़े–बड़े जहाज बंगाल की खाड़ी के समुद्री मार्ग से मलाया आदि दक्षिणी पूर्वी देशों को जाते थे।[119] एक बौद्ध कथा के अनुसार, अशोक के पुत्र महेन्द्र ने पाटलीपुत्र से ताम्रलिप्ति और वहां से श्रीलंका तक की अपनी यात्रा नाव द्वारा पूरी की थी। महावंश में भी वर्णन मिलता है कि श्रीलंका के राजा देवानाम् तिष्य ने अपने चार अनुयायियों को उत्तरी श्रीलंका के जम्बूकोल से ताम्रलिप्ति की यात्रा के लिये भेजा था, जो उन्होनें सात दिनों में पूरी कर ली थी।[120] सम्राट अशोक की पुत्री संघमित्रा बोधिवृक्ष की शाखा लेकर ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह से ही श्रीलंका को गयी थी। सम्राट अशोक बोधिवृक्ष की शाखा को ताम्रलिप्ति से श्रीलंका ले जाने के अवसर पर स्थलमार्ग द्वारा ताम्रलिप्ति पहुंचे थे। ताम्रलिप्ति को दो मार्ग–एक स्थल मार्ग और दूसरा जल मार्ग उत्तरी भारत से जोड़ते थे। एक जलमार्ग म्यांमार को पार करके चीन तक पहुंचता था तथा चम्पा से भी एक व्यापारिक मार्ग ताम्रलिप्ति तक पहुंचता था।[121] चम्पा के व्यापारी ताम्रलिप्ति होते हुये सुवर्णभूमि तक भी जाते थे। सामंत पासदिका में ताम्रलिप्ति और सुवर्णभूमि जाने का एक साथ उल्लेख किया गया है। आन्तरिक नदी मार्गों द्वारा भी ताम्रलिप्ति उत्तरी भारत के प्रमुख नगरों से जुड़ा हुआ था। बंग, पुण्ड्र और काशी का रेशम इन नदी मार्गों द्वारा ही उज्जैन पहुंचता था, जहां से निर्यात के लिये ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह तक पहुंचाया जाता था।[122] इस बन्दरगाह से तीन समुद्री मार्ग जाते थे। इनमें से दो तटीय मार्ग थे, जिनमें से एक मार्ग दक्षिण–पश्चिम दिशा को जाता था और दूसरा मार्ग दक्षिण–पूर्वी दिशा में आराकान तट से म्यांमार को जाता था। परवर्ती काल के ग्रन्थ पेरिप्लस के अनुसार, चीन से सूती वस्त्र और कच्चा माल ताम्रलिप्ति के बन्दरगाह पर पहुंचाया जाता था और फिर वहां से दक्षिण को भेजा जाता था।[123] परवर्ती काल में चीनी यात्री ताम्रलिप्ति को 'तन–मो–ली–ती' कहते थे। उनके अनुसार, इसकी परिधि 1400 या 1500 ली थी। यहां की भमि नीची और उर्वर थी, जिस पर निरन्तर खेती होती थी। यहां की जलवायु उष्ण थी। यहां के निवासी निर्भीक एवं वीर थे। यहां पर कुछ संघाराम और मन्दिर थे। परवर्ती काल में चीनी यात्री फाह्यान ताम्रलिप्ति गया और दो वर्षो तक रूका बाद में यहीं से श्रीलंका को गया। फाह्यान के वर्णन से पता चलता है कि यहां बौद्ध धर्म का बहुत प्रचार था।[124]

चीन से यहां पर रेशमी वस्त्र आता था तथा पूर्वी द्वीपसमूह से लौंग मसाले आदि आते थे। ताम्रलिप्ति को चम्पा से 50 योजन की दूरी पर बताया गया है। ताम्रलिप्ति से समुद्री जहाज विभिन्न बन्दरगाहों के लिये जाते थे, जिनमें से कुछ ताम्रपर्णी (श्रीलंका) तक जाते थे। ताम्रपर्णी से आये हुये मोतियों का उल्लेख कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में भी किया है। ताम्रलिप्ति से ताम्रपर्णी सहित दक्षिण–पूर्व के सभी देशों के साथ अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध थे।[125]

कंचनपुर :

उड़ीसा में 600 कि॰ मी॰ लम्बा समुद्र तट है, जिसमें प्राचीन काल में कई विकसित पोताश्रय स्थित थे, जिनका प्राचीन भारतीय व्यापार में महत्वपूर्ण स्थान रहा था। कंचनपुर पूर्वी समुद्र तट पर स्थित प्रसिद्ध बन्दरगाह था, जिसकी पहचान उड़ीसा में आधुनिक भुवनेश्वर के साथ की गयी है। सम्राट अशोक की कलिंग विजय का वर्णन रोमिला थापर ने व्यापारिक महत्व को माना है। उनके अनुसार, कलिंग राज्य की स्वतन्त्रता मौर्य साम्राज्य के व्यापार एवं वाणिज्य में एक बड़ी बाधा थी। कंचनपुर के ताम्रपर्णी से साथ व्यापारिक सम्बन्ध थे। कंचनपुर के कुछ व्यापारी लंकाद्वीप से हीरों के साथ यहां पर वापस लौटकर आये थे। इस प्रकार कंचन पर एक महत्वपूर्ण पोताश्रय रहा था।[126]

दंतपुर :

मौर्यकाल में पंतपुर पूर्वी समुद्रतट पर स्थित एक बन्दरगाह था। यह प्राचीन कलिंग की राजधानी था। अनेक जातक कथाओं में कलिंग और उसकी राजधानी दंतपुर का उल्लेख हुआ है। यद्यपि अभी तक दंतपुर की आधुनिक पहचान निश्चित रूप से नहीं की जा सकी है, परन्तु अनुमानतः दंतपुर की पहचान उड़ीसा में आधुनिक जगन्नाथपुरी से की गयी है। एक बौद्ध परम्परा के अनुसार, दंतपुर बुद्ध के दांत की कथा के अनुसार प्रसिद्ध हुआ। टॉलमी ने दंतपुर को पलुर (पलौर) कहा है। 'पल' दांत के लिये तथा 'ऊर' नगर के लिये प्रयोग किया गया था। बी॰ सी॰ सेन के अनुसार भी दंतपुर और फ्लौर का अर्थ एक समान ही है।

एस॰ लेवी ने पलुर की पहचान दंतपुर से की है, जो ह्वेनसांग के समय में एक महत्वपूर्ण एवं विकसित पोताश्रय था। भारत और सुदूरपूर्व के व्यापारिक मार्ग पर स्थित होने के कारण दंतपुर पोताश्रय का महत्व बहुत अधिक था।[127]

कावेरीपट्टनम :

कावेरीपट्टनम दक्षिण भारत में कोरोमंडल तट पर कावेरी नदी के मुहाने पर स्थित था। यह प्राचीन काल में चोल साम्राज्य की राजधानी थी, जिसका वर्णन सम्राट अशोक के शिलालेख तेरह में चेर और पाण्डयों के साथ किया गया है। तमिल ग्रन्थ 'शिलप्पादिकारम्' में कावेरीपट्टनम को पुहार कहा गया है, जो उसका एक अन्य नाम था।[128] इस ग्रन्थ के अनुसार, यह नगर दो भागों पट्टिनापाक्कम और मरूवरपाक्कम् में बंटा हुआ था। समुद्र तट के समीप के भाग को मरूवरपाक्कम् और इसके पश्चिम में स्थित नगर को पट्टिनपाक्कम कहते थे।[129] पट्टिनापक्कम् नगर में व्यवसायियों और व्यापारियों के घर बने हुये थे। इन दोनों भागों के मध्य में खुली जगह में बाजार लगता था। कावेरीपट्टनम बन्दरगाह का निर्माण बहुत ही वैज्ञानिक तरीके से किया गया था। यहां पर माल उतारने, चढ़ाने और संग्रह करने की सुविधायें प्रदान की गयी थी। समुद्र तट के समीप ही खुले चबूतरे और गोदाम भी बने हुये थे, जहां पर आने वाले माल को उतारा जाता था। यहां पर चुंगी अदा करने तथा मोहर लगाने के पश्चात माल व्यापारियों के गोदामों में पहुंच जाता था। बन्दरगाह के समीप ही यवन व्यापारियों की बस्तियां और बाजार भी थे, जहां पर हर समय मनमोहक वस्तुयें बिक्री के लिये उपलब्ध होती थी। पास में ही विदेशी व्यापारियों के ठहरने के स्थान भी थे। विदेशी व्यापारी दूर–दूर से यहां पर आते थे और विभिन्न भाषायें बोलते थे। यह इत्र, सुगन्धित पदार्थ, सूती ऊनी, रेशमी वस्त्र, चन्दन, मूंगे, मोती, सोना और कीमती पत्थरों का केन्द्र था।[130] टॉलमी ने कावेरीपट्टनम का वर्णन इस प्रकार किया है कि काबेरस के मुहाने पर कावेरी एक मण्डी है। मिलिंदपन्हो में इसे कोलपत्तन कहा गया है, जो रीज डेविड के अनुसार कोरोमण्डल तट पर स्थित एक स्थान था। पेरिप्लस के अनुसार, यह विभिन्न प्रकार के मसाले और अन्य भारतीय वस्तुओं को निर्यात करने के लिये एक प्रसिद्ध बन्दरगाह था।[131]

निष्कर्ष :

उपर्युक्त वर्णन से यह पता चलता है कि मौर्य काल में भारत के पूर्वी समुद्र तट और पश्चिमी समुद्र तट पर अनेक महत्वपूर्ण बन्दरगाह स्थित थे। इन बन्दरगाहों के माध्यम से मौर्य काल में भारत के व्यापारिक सम्बन्ध देश के आन्तरिक भागों के साथ–साथ सुदुर देशों से भी स्थापित थे। इन बन्दरगाहों के माध्यम से भारतीय व्यापार अपने व्यापारिक माल को जहाजों में भरकर विदेशों में ले जाते थे और विदेशी व्यापारी अपना माल भारत में बेचने के लिये लाते थे। जल परिवहन को सुचारू रूप से चलाने के लिये नावाध्यक्ष नामक एक अधिकारी नियुक्त होता था, तथा राज्य की ओर से छोटी–बड़ी नाकाओं का प्रयोग भी किया जाता था। मौर्यकाल में जहां पर पश्चिमी समुद्री तट पर स्थित बन्दरगाहों से फारस की खाड़ी और पश्चिमी देशों के साथ व्यापार किया जाता था, वहीं पर पूर्वी समुद्री तट पर स्थित बन्दरगाहों से दक्षिणी–पूर्वी देशों के साथ व्यापार किया जाता था। मौर्य काल में मुख्य रूप से सुवर्णभूमि, श्रीलंका, ताम्रपर्णी, फारस की खाड़ी, मिस्र, यूनान और चीन इत्यादि देशों के लिये व्यापारियों के जहाज इन बन्दरगाहों पर आया–जाया करते थे। इन बन्दरगाहों से आन्तरिक और बाह्य दोनों ही प्रकार के व्यापार को प्रोत्साहन मिला, जिसके परिणामस्वरूप मौर्यकाल में व्यापार का प्रसार और विकास हुआ।

संदर्भिका

1. R. S. Sharma, Urban Development in Ancient India, p. 111
2. J. W. McCrindle, Ancient India Age described by Megasthenes and Arian, Calcutta,1926, p. 136-09
3. अर्थशास्त्र, 2.3
4. दिव्यावदान, पृ॰ 429
5. महावंश 5.80 और 5.174–175
6. राधाकुमुद मुखर्जी चन्द्रगुप्त मौर्य और उनका काल पृ॰ 267
7. राजतरंगिणी 1.102.104
8. डॉ॰ कौलेश्वरराय, भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, पृ॰ 143
9. बी॰ सी॰ लाहा, प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृ॰ 4–18
10. J. W. McCrindle, Ancient India Age described by Megasthenes and Arian, Calcutta,1926, p. 65-67
11. R. S. Aggarwal, Trade Centre and Routes in Northern India, p. 95
12. सामतपासदिका, पृ॰ 96–97
13. P. C. Bagchi, India and China, p.18
14. P. C. Prasad, Foreign Trade and Commerce in Ancient India, p. 71
15. अष्टाध्यायी, 3.93

16. John Marshal, Taxila, p. 1-42
17. G. P. Malsekar, Dictionary of Pali Proper Names, part-I, p. 982
18. A. S. Altekar, Education in Ancient India p. 110
19. D. C. Sircar, Selected Inscriptions in Ancient India, p. 44
20. R. S. Aggarwal, Trade Centre and Routes in Northern India, p. 113
21. जातक 2.248
22. G. M. Bonguard Levin, Mauran India, p. 128
23. बी॰ सी॰ लाहा, प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृ॰ 201
24. R. S. Aggarwal, Trade Centre and Routes in Northern India, p. 98
25. Haripad Chakarwarti, Trade and Commerce in Ancient India, p. 157
26. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृ॰ 55
27. R. S. Aggarwal, Trade Centre and Routes in Northern India, p. 99
28. V. A. Smith, Early History of India, p. 130
29. A. Caningham, Early History of India, p. 368
30. R. S. Aggarwal, Trade Centre and Routes in Northern India, p. 105&06
31. थरेगाथा अट्ठकथा, 2 पृ॰ 142
32. अष्टाध्यायी, 4.2.92
33. J. W. McCrindle, Ancient India as described in Classical Literature, Westminster, 1901, p. 98
34. बी॰ सी॰ लाहा, प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृ॰ 182
35. J. W. McCrindle, Ancient India as described in Classical Literature, Westminster, 1901, p. 124
36. कृष्णदत्त वाजपेयी, मथुरा, पृ॰ 23
37. वही, पृ॰ 24
38. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन पृ॰ 75–76
39. G. P. Malsekar, Dictionary of Pali Proper Names, p. 125
40. अर्थशास्त्र, 2.11
41. दीघनिकाय, 11.146,149
42. शतपथ ब्राहम्ण, 12.2, 2.13
43. A. Cuningham, Ancient Geography of India, p. 454
44. Ghosh, Early History of Koshambi, p. 17
45. Reez Devid, Budhist India, p. 104
46. D. C. Sircar, Selected Inscription in Ancient India, p. 72
47. अर्थशास्त्र, 2.11
48. G. P. Malsekar, Dictionary of Pali proper Names, part-I, p. 692
49. Ibid, p. 693
50. विनयपिटक, पृ॰ 272
51. भरत सिंह उपाध्याय, बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ॰ 236
52. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत के नगर तथा नगर जीवन, पृ॰ 114
53. दिव्यावदान, पृ॰ 55, 94–95
54. जातक, 1.92, 398
55. सुत्तनिपात, 10, 11.13
56. G. P. Malsekar, Dictionary of Pali Proper Names, part-II, p. 277
57. जातक 4.377, 6.160
58. विनयपिटक पृ॰ 79–80
59. कृष्णदत्त वाजपेयी, प्राचीन भारत का विदेशों से सम्बन्ध, पृ॰ 51
60. अंगुत्तरनिकाय, पृ॰ 270

61. E. J. Rapson, Cambridge History of India, Part-I, p. 184
62. अर्थशास्त्र, 2.11
63. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृ॰ 126
64. मोती चन्द, काशी का इतिहास, पृ॰ 61
65. उमा पाण्डे, वाराणसी, पृ॰ 46
66. वही, पृ॰ 331
67. A. S. Altekar, History of Banaras, p. 17
68. A.S.I. Report, 55-56
69. Reez David, Buddhist India, p. 40
70. विनयपिटक, पृ॰ 210–11
71. Reez David, Buddhist India, p. 107
72. डॉ॰ रामलाल सिंह, प्राचीन भारतीय संस्कृति कला एवं दर्शन, पृ॰ 314
73. जातक, 4.54
74. वही, पृ॰ 256
75. F. H., Travels of Fahayan, p. 65
76. महेश्वरी दयाल खरे, विदिशा, पृ॰ 6,71
77. उदय नारायण राय, प्राचीन भारत में नगर तथा नगर जीवन, पृ॰ 186
78. A.S.I. Report, p. 36-46
79. महेश्वरी दयाल खरे, उपर्युक्त, पृ॰ 7
80. बी॰ सी॰ लाहा, प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृ॰ 293
81. P. C. Prasad, Foreign Trade and Commerce in Ancient India, p. 79
82. बी॰ सी॰ लाहा, प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल, पृ॰ 308
83. सुत्तनिपात, 1001, 1011–13
84. इम्पीरियल गजेटियर, 19.317
85. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ॰ 163
86. R. S. Aggarwal, Trade Centre Routes in Ancient India, p. 115
87. W. W. Torn, Greeks in Bacteria and India, p. 370-71
88. V. A. Smith, Early History of India, p. 101-03
89. W. H. Shoff, Periplus of Erithrian Sea, p. 38
90. टॉलमी भूगोल, 7.1ए 5.19
91. अर्थशास्त्र, 2.11
92. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ॰ 117
93. Journal of the Bihar Archaeological Counsel, p. 116
94. S. K. Bhomik, Examples of Fine Art Connected with Ancient Maritime Activities in Gujrat ref. S. R. Rai (ed.) Merin Archaeology of Indian Ocean Countries, p. 97
95. A. S. Altekar, Ancient Town and Cities in Gujrat and Kathiawad, p. 33
96. Brajesh Krishan, Foreign Trade in Early Medieval India, p. 27
97. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ॰ 117
98. वही
99. जातक, 3 पृ॰ 188
100. वही, 4, पृ॰ 137
101. डी॰ आर॰ भण्डारकर, अशोक, पृ॰ 254–55
102. दिव्यावदान, पृ॰ 42
103. अपादान, 2, पृ॰ 476
104. योगेन्द्र मिश्र, 'प्राचीन भारतीय व्यापार एवं समुद्र यात्रा', Journal of the Bihar Archaeological Counsel, part-47, p.4-5
105. दीपवंश, 15.16 महावंश, 9.46

106. V. A. Smith, Early History of India, p. 101-03
107. Journal of the Bihar Archaeological Counsel, p. 115
108. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ॰ 118
109. S. K. DAS, ECONOMIC HISTORY OF INDIA, P.160-61
110. Brajesh Krishan, Foreign Trade in Early Medieval India, p. 31
111. Riz Dawid, Buddhist India, p. 103
112. Brajesh Krishan, Foreign Trade in Early Medieval India, p. 31
113. H. B. Sircar, Cultural Relation Between India and South East Asian Countries, p. 249
114. विनयपिटक, पृ॰ 338
115. महावंश, 11.20
116. S. B., Buddhist Record of the Western World, Part-II, p. 200
117. H. B. Sircar, Cultural Relation Between India and South East Asian Countries, p. 269
118. F. H. Gailash, Travel of Fahayan, p. 65
119. अर्थशास्त्र, 2.15
120. Shella Tripti, Ancient Pats of Kalinga Ref. S. R. Rai (ed.) Recent advances in Merin Archaeology, p. 192
121. P. C. Prasad, Foreign Trade and Commerce in Ancient India, p. 81
122. जातक, पृ॰ 367, 371, 376, 381, 230–36
123. Geographical Dictionary of Ancient and Medieval India, p. 53
124. Haripad Chakraborti, Trade and Commerce of Ancient India, p. 143
125. Brajesh Krishan, Foreign Trade in Early Medieval India, p. 33
126. वी॰ आर॰ दीक्षितार, शिलप्पादिकारम्, पृ॰ 88
127. मोतीचन्द्र, सार्थवाह, पृ॰ 157
128. Haripad Chakraborti, Trade and Commerce of Ancient India, p. 128
129. वी॰ आर॰ दीक्षितार, शिलप्पादिकारम्, पृ॰ 174–86
130. Haripad Chakraborti, Trade and Commerce of Ancient India, p. 127
131. W. H. Shoff, Peripluse of Erithrian Sea, p. 60